"आवश्यक आत्मिक फैसला"

३ "कर्मकाण्ड रूपी बंधनकारी प्रक्रिया विशेष"

1. "साखी" - भक्त माधवदास की कहानी

माधवदास एक सरल स्वभाव के व्यक्ति थे और भगवान जगन्नाथ के परम भक्त थे । एक बार माधव दास जी को अतिसार (उलटी-दस्त) से पीड़ित हो गए थे जिस के कारण बहुत दुर्बल हो गए थे और वे उठने-बैठने के लिए भी समर्थ नहीं थे । हालाकि, अपनी क्षमता के अनुसार वे अपने सभी कार्य स्वयं ही करते थे और किसी भी अन्य व्यक्ति से मदद नहीं लेते थे । कोई कहे महाराज जी हम आपकी सेवा कर दें, तो वे कहते थे कि नहीं, मेरे तो एक जगन्नाथ ही हैं वही मेरी रक्षा करेंगे । ऐसी दशा में जब उनका रोग बढ़ गया तो तब श्री जगन्नाथ जी स्वयं सेवक बनकर इनके घर पहुंचे और माधव दास जी को कहा कि हम आपकी सेवा कर दें ।

क्योंकि उनका रोग इतना बढ़ गया था कि उन्हें पता भी नहीं चलता था कि वे कब मल-मूत्र त्याग देते थे जिसकी वजह से उनके वस्त्र गदे हो जाते थे । उन वस्त्रों को भगवान जगन्नाथ स्वयं अपने हाथों से साफ करते थे । इतना ही नहीं, प्रभु उनके पूरे शरीर को भी साफ करते थे । जब माधव दास जी को होश आया तब उन्होंने तुरंत पहचान लिया कि यह तो मेरे प्रभु ही हैं और उनहोने प्रभु से पूछ ही लिया, "प्रभु आप तो त्रिभुवन के मालिक हो, स्वामी हो, आप मेरी सेवा कर रहे हो, आप चाहते तो मेरा ये रोग भी तो दूर कर सकते थे, रोग दूर कर देते तो ये सब करना ही नहीं पड़ता ।" भक्त की बातें सुनकर प्रभु ने कहा, "देखो माधव ! मुझसे भक्तों का कष्ट नहीं सहा जाता, इसी कारण तुम्हारी सेवा मैंने स्वयं की ।

जो प्रारब्ध होता है उसे तो भोगना ही पड़ता है । अगर उसे काटोगे तो इस जन्म में नहीं, लेकिन उसे भोगने के लिए फिर तुम्हें अगला जन्म लेना पड़ेगा और मैं नहीं चाहता कि मेरे भक्त को जरा से प्रारब्ध के कारण फिर अगला जन्म लेना पड़े । इसीलिए मैंने तुम्हारी सेवा की लेकिन अगर फिर भी तुम कह रहे हो तो भक्त की बात भी नहीं टाल सकता ।"

प्रभु जगन्नाथ अपने भक्तों के सहायक बन उन्हें प्रारब्ध के दुखों से, कष्टों से सहज ही पार कर देते हैं । प्रभु ने अपने भक्त माधव से कहा, "अब तुम्हारे प्रारब्ध में 15 दिन का रोग और बचा है, इसलिए 15 दिन का रोग तू मुझे दे दे । जिसके बाद प्रभु जगन्नाथ ने अपने भक्त माधव दास के बचे हुए 15 दिन का रोग स्वयं ले लिया । यही वजह है कि भगवान जगन्नाथ आज भी रथ यात्रा से पहले 15 दिन तक बीमार रहते हैं ।

इस साखी को दर्शाने का मतलब यह नहीं है कि हमने किसी धर्म की बढाई या महानता साबित करनी है । हमें तो केवल साखी से दी गई शिक्षा से मतलब है और उसे हमने अपने जीवन में कैसे लागू करना है यह हमारा मूल उद्देश्य विशेष है । इसका मुख्य मूल भगवान और भगत के बीच के गहरे प्रेम को दर्शाना है । सांसारिक - धार्मिक कर्मकांड इत्यादि-इत्यादि को देखकर उसमें फसना रचना या उनका अनुसरण करना हमारा उद्देश्य नहीं है । सबसे बड़ी बात यह है कि कोई भी कर्म मिटाया नहीं जा सकता चाहे कोई व्यक्ति विशेष कितना भी बड़ा भक्त हो उसे खुद वह

भुगतना ही पड़ेगा जब तक वह कर्म अपने पर किसी न किसी तरीके से भुगताया नहीं जाऐगा तब तक वह साफ नहीं होगा । और बिना सफाई के आत्मा अगले मंडलों पर अपना विशेष सफर तय नहीं कर सकती । जैसे कि इस साखी में दर्शाया गया है कि चाहे भक्त हो या भगवान हो उसे अपने ऊपर वह कर्म निपटाना ही पड़ेगा तभी आत्मा आगे जा सकती है । यहां पर तो भक्त के पास स्वयं खुद भगवान विशेष थे जिन्होंने अपने ऊपर यह करम निपटा लिया अब आप खुद सोचो कि आपके पास कौन सा परमात्मा सतगुरु इत्यादि विशेष है जो आपके अनगिनत जन्म कालों के मैले कर्म कांड विशेष अपने ऊपर लेकर आपको पार उतरवाएंगे.....?

2. मुक्त (सूचे) एह न आखीअह - बहन ज पिंडा धोइ.....!
सूचे सेई नानका - जिन मन वसिआ सोइ । (472)

अर्थः- ऐसे मनुष्य स्वच्छ नहीं कहे जाते जो सिर्फ शरीर को ही धो के (अपनी ओर से पवित्र बन के) बैठ जाते हैं । हे नानक ! केवल वही मनुष्य स्वच्छ हैं, सुच्चे हैं जिनके मन में प्रभु बसता है ।

3. कहा भइओ तीरथ ब्रत कीए - राम सरन नही आवै.....!
जोग जग निहफल तिह मानउ - जो प्रभ जस बिसरावै ।

अर्थः- हे भाई ! अगर मनुष्य परमात्मा की शरण नहीं पड़ता, तो उसका तीर्थ-यात्रा करने का कोई लाभ नहीं, व्रत रखने का कोई फायदा नहीं । जो मनुष्य परमात्मा की महिमा भुला देता है मैं समझता हूँ कि उसके योग-साधना और यज्ञ (आदि कर्मकांड सब) व्यर्थ हैं । (831)

4. जान बूझ के बावरे - तै काज बिगारिओ.....! पाप करत सुकचिओ नही - नह गरब निवारिओ । (727)

अर्थः- हे झल्ले मनुष्य ! ये सब कुछ जानते हुए समझते हुए भी तू अपना काम बिगाड़ रहा है । तू पाप करते हुए (कभी) संकोचित नहीं होता, तू (इस धन-पदार्थ का) अहंकार भी दूर नहीं करता ।

5. निर्मल मन जन सो मोहि पावा - मोहि कपट छल छिद्र न भावा.....! (रामचरितमानस - गोस्वामी तुलसीदास)

अर्थः- ईश्वर की प्राप्ति के लिए मन की शुद्धता आवश्यक है । केवल ऐसे भक्त ही ईश्वर की कृपा प्राप्त कर सकते हैं, जिनके हृदय में कोई मैल, आडंबर या द्वेष नहीं होता है । कपट, छल और बुराई वाले मन से ईश्वर दूर ही रहते हैं, क्योंकि वे सच्चे और निष्कपट भक्तों के ही होते हैं ।

2 "मानव जन्म रूपी रथ विशेष" (आत्मा मुक्ति हेतू)

1. "हरि मंदर" एहु सरीर है - गिआन रतन परगट होइ ।

अर्थः- हे भाई ! (मनुष्य का) यह शरीर 'हरि-मंदिर' है (पर, यह भेद सतिगुरु की बख्शी) आत्मिक जीवन की कीमती सूझ से ही खुलता है । अपने मन के पीछे चलने वाले जगत के मूल परमात्मा के साथ सांझ नहीं डालते इसलिए वे समझते हैं कि मनुष्य के अंदर 'हरि-मन्दिर' नहीं हो सकता ।

बाहर ढूढत बहुत दुख पावह - घर अम्रित घट माही जीउ.....!

अर्थः-हे मेरे मन ! अंदर ही प्रभू चरणों में टिका रह, देखना, नाम-अमृत की तलाश में कहीं बाहर ना भटकते फिरना । अगर तू बाहर ढूँढने निकल पड़ा, तो बहुत दुख पाएगा । अटल आत्मिक जीवन देने वाला रस तेरे घर में ही है, हृदय में ही है ।

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी - 464, 598)

2. आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च । बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च । (कठोपनिषद्, अध्याय १, वल्ली ३, मंत्र ३)

अर्थः- इस जीवात्मा को तुम रथी, रथ का स्वामी, समझो, शरीर को उसका रथ, बुद्धि को सारथी, रथ हांकने वाला, और मन को लगाम समझो ।

इंद्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् । (मंत्र ४)

अर्थः- विद्वानो विवेकी पुरुषों, ने इंद्रियों को इस शरीर-रथ को खींचने वाले घोड़े कहा है, जिनके लिए इंद्रिय-विषय विचरण के मार्ग हैं, इंद्रियों तथा मन से युक्त इस आत्मा को उन्होंने शरीररूपी रथ का भोग करने वाला बताया है ।

यह साखी अवगत कराती है कि इस मानव शरीर को एक रथ के समान मानो, इसके आगे पांच घोड़े हांक रहे हैं । यह पांच घोड़े पांच इंद्रियों के समान है । इन घोड़े के मुख में मन रूपी लगाम है और यह लगाम बुद्धि रूपी सारथी के हाथ में है । और रथ के मुख्य आसन पर आत्मा रूपी यात्री बैठी हुई है । इस रथ का मुख्य उद्देश्य इस जन्म मरण रूपी अनंत दुखों से भरपूर भयानक मौत का तांडव करने वाली इस भूलोक रूपी चक्रव्यूह से बाहर निकलना है ।

आत्मा रूपी यात्री को चाहिए कि वह सारथी को उचित निर्देश दे जो लगाम को नियत्रित कर घोड़े को उचित दिशा की ओर जाने में मार्गदर्शन दे सके । इंद्रियों मन के अधीन लगाम रूपी बंधन में पूरी तरह से बंदी बनाकर बुद्धि के जरिए आत्मा रूपी रथी विशेष के वश में होनी चाहिये पूर्ण मर्यादित विशेष हो निरंतर विचार कर । मन रूपी लगाम को इंद्रियों को नियंत्रण हेतु पूरी तरह से तन विशेष कर रखें.....! प्रत्यक्ष में हो बिल्कुल ही उल्टा रहा है आत्मा रूपी सारथी सोई हुई है और मन इंद्रियों का गुलाम है और बुद्धि विशेष के होते हुए भी आत्मा विचारहीनता के ऐवज में मन की गुलामी करना पसंद करती है और निरंतर केवल उसे प्रसन्न करने हेतु ही इंद्रियों को विभिन्न घाटो विशेषों पर डुबकियां रूपी डूबने वाले गोते विशेष महान-महान लगाती फिर रही है.....! "मन माइआ कै हाथ बिकानउ.....!" मन इंद्रियों को अपने पसंद की पदार्थ की कामना के आगे मनमानी करने से रोक नहीं पाता और बुद्धि विशेष होते हुए भी आत्मा अपने आप को उसके समक्ष आत्म समर्पण कर

देती है इस प्रकार मायाबद्ध आत्मा बुद्धि को उचीत दिशा में ले जाने की बजाय स्वयं सोते हुए दिशाहीन इस चक्रव्यूह में फसी जन्म मरण के गेड से बाहर नहीं निकाल पाती, बल्कि अनंत निकृष्ट योनियों में यही बार-बार जमती और मरती है अनंत काल विशेष के लिए.....! आत्मा इन्द्रियों के सुखों का अनुभव परोक्ष रूप में करती है किन्तु ये इन्द्रियाँ उसे तृप्त नहीं कर पाती । इसी कारण से रथ के आसन पर बैठी आत्मा (यात्री) इस भौतिक संसार में अनन्त काल से चक्कर लगा रही है ।

यदि आत्मा अपनी दिव्यता के बोध से जागृत हो जाती है और अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन करने का निश्चय करती है तब वह बुद्धि को उचित दिशा की ओर ले जा सकती है । तब फिर बुद्धि अपने से निम्न मन और इन्द्रियों द्वारा शासित नहीं होगी और रथ आत्मिक उत्थान की दिशा में दौड़ने लगेगा । अतःआत्मा द्वारा इन्द्रियों, मन और बुद्धि को नियन्त्रित करने का प्रयास करना चाहिए ।

एक बात अच्छी तरह से समझ ले, जब तक तेरे प्राण विषेश हैं- तू नाच-कूद तो बहुत सकता है - पर तेरे अमर्यादित व्यवहार रूपी सोच के - एक छोटे से ज़र्रे विषेश के भी - विकराल तड़पाने वाले निकल चुके नतीजों विषेश को "भुगतने विषेश" से तू बच नहीं सकता - अनन्त काल विषेश के बाद - सभी दुर्लभ महान-महान कर्म-काण्ड रूपी उपायों विषेशों को व्यवहारी रूप से आजमाने विषेश के बाद भी.....! क्योंकि किसी की तेरी व्यवहारी

सोच के प्रत्येक अंष छोटे से भी पर भरपूर पकड़ रूपी नज़र विषेश है.....! चालाक रथी रूपी आत्मा विषेश.....?

1 "आरता"

1. गगन मै थाल रव चंद दीपक बने - तारिका मंडल जनक मोती । धूप मलआनलो पवण चवरो करे - सगल बनराइ फूलंत जोती ।

अर्थ:- सारा आकाश (जैसे कि) थाल है । सूरज और चाँद (उस थाल में) दिये बने हुए हैं । तारों के समूह, जैसे, थाल में मोती रखे हुए हैं । मलय पर्वत से आने वाली हवा, जैसे धूप (धूणे की सुगंध) है । हवा चौर कर रही है । सारी बनस्पति ज्योति-रूप (प्रभु की आरती) वास्ते फूल दे रही है ।

कैसी आरती होइ । भव खंडना तेरी आरती । अनहता सबद वाजंत भेरी ।

अर्थ:- हे जीवों के जनम, मरन, नाश करने वाले ! (कुदरति में) कैसी सुंदर तेरी आरती हो रही है ! (सभ जीवों में चल रहीं) एक ही जीवन तरंगें, मानों तेरी आरती के वास्ते नगारे बज रहे है ।

सहस तव नैन नन नैन हह तोह - कउ सहस मूरत नना एक तुोही । सहस पद बिमल नन एक पद - गंध बिन सहस तव गंध इव चलत मोही ।

अर्थः- सभ जीवों में व्यापक होने के कारण हजारों तेरी आँखें हैं (पर, निराकार होने की वजह से, हे प्रभु) तेरी कोई आँख नहीं। हजारों तेरी शक्लें हैं, पर तेरी कोई भी शक्ल नहीं है। हजारों तेरे सुंदर पैर हैं (पर निराकार होने के कारण) तेरा एक भी पैर नहीं। हजारों तेरे नाक हैं, पर तू नाक के बिना ही है। तेरे ऐसे चमत्कारों ने मुझे हैरान किया हुआ है।

सभ महि जोति जोति है सोइ। तिस दै चानणि सभ महि चानणु होइ। गुर साखी जोति परगटु होइ। जो तिसु भावै सु आरती होइ।

अर्थः- सारे जीवों में एक वही परमात्मा की ज्योति बरत रही है। उस ज्योति के प्रकाश से सारे जीवों में प्रकाश (सूझ-बूझ) है। पर, इस ज्योति का ज्ञान गुरु की शिक्षा से ही होता है। (गुरु के द्वारा ही ये समझ पड़ती है कि हरेक के अंदर परमात्मा की ज्योति है) (इस सर्व-व्यापक ज्योति की) आरती ये है कि जो कुछ भी उसकी रजा में हो रहा है, वह जीव को अच्छा लगे (प्रभु की रजा में रहना ही प्रभु की आरती करना है)।

हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो - अनदिनो मोहि आही पिआसा। क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ - होइ जा ते तेरै नाइ वासा। (श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी – 13)

अर्थः- हे हरि! तुम्हारे चरण-रूपी कमल फूलों के लिए मेरा मन ललचाता है, हर रोज मुझे इस रस की प्यास लगी हुई है। मुझ नानक

पपीहे को अपनी मेहर का जल दे, जिस (की इनायत) से मैं तेरे नाम में टिका रहूँ ।

गुरु नानक देव जी ने अपनी आध्यात्मिक यात्राओं - उदासी (1506/1508) के दौरान जगन्नाथ पुरी की यात्रा की थी । जब गुरु नानक देव जी अपने शिष्य भाई मर्दाना के साथ जगन्नाथ मंदिर पहुँचे, तो उन्हें उनकी वेशभूषा और साथ आए एक मुस्लिम शिष्य के कारण मंदिर के पुजारियों ने अंदर जाने से रोक दिया । इसके बाद, गुरु जी समुद्र तट के पास एक टीले पर बैठ गए और वहीं भजन-कीर्तन करने लगे । जब मंदिर के पुजारियों ने गुरु नानक को आरती में शामिल होने के लिए कहा, तो गुरु जी ने मूर्ति के सामने औपचारिक आरती करने से मना कर दिया । इसके बाद उन्होंने “गगन मैं थाल” (गगन में थाल) नामक आरती गाई । इस आरती में उन्होंने बताया कि पूरी प्रकृति, जिसमें आकाश थाल है, सूर्य और चंद्रमा दीपक हैं, तारे मोती हैं और हवा चंवर डुला रही है, वह निरंतर परमात्मा की आरती कर रही है । इसके माध्यम से, उन्होंने सिखाया कि सच्ची भक्ति आंतरिक होती है और बाहरी कर्मकांडों से परे होती है ।

2. सुण-सुण नाम तुमारा प्रीतम - प्रभ पेखन का चाउ । दइआ करहु किरम अपुने कउ - इहै मनोरथ सुआउ ।

अर्थः- हे मेरे प्यारे ! तू मेरा मालिक है, अपने इस नाचीज सेवक(कीड़ा) पर मेहर कर कि तेरा नाम सुन-सुन के मेरे अंदर तेरे दर्शनों का चाव बना रहे- मेरा ये मनोरथ पूरा कर, मेरी ये अभिलाषा पूरी कर ।

उदम करउ करावहु ठाकुर - पेखत साधू संग । हरि-हरि नाम चरावहु रंगन - आपे ही प्रभ रंग ।

अर्थः- हे मेरे मालिक ! (मुझसे ये उद्यम) करवाता रह, गुरु की संगति में तेरे दर्शन करते हुए मैं तेरा नाम जपने का आहर करता रहूँ। हे प्रभू ! मेरे मन पर तू अपने नाम की रंगत चढ़ा दे, तू खुद ही (मेरे मन को अपने प्रेम के रंग में) रंग दे।

मन मह राम नामा जाप । कर किरपा वसहु मेरै हिरदै - होइ सहाई आप ।

अर्थः- मन ही मन भगवान का नाम (शब्द गुरू रूपी रागमई प्रकाशित सुगंधित आवाज़ विशेष) जपता रह निरंतर । हे प्रभू ! (मेरे पर) किरपा कर, मेरे दिल में आ बस । यदि तू मेरा मददगार बने तो मैं अपने मन में तेरा राम-नाम जपता रहूँ ।

तन धन तेरा तूं प्रभ मेरा - हमरै वस किछ नाह । जिउ-जिउ राखह तिउ-तिउ रहणा - तेरा दीआ खाह ।

अर्थः- (हे प्रभू !) मेरा ये शरीर, मेरा ये धन सब कुछ तेरा ही दिया हुआ है, तू ही मेरा मालिक है । (हम जीव अपने उद्यम से तेरे नाम जपने के योग्य भी नहीं हैं) हमारे बस में कुछ भी नहीं है । तू हम जीवों

को जिस-जिस हाल में रखता है उसी तरह ही हम जीवन बिताते हैं, हम तेरा ही दिया हुआ हरेक पदार्थ खाते हैं ।

जनम-जनम के किलविख काटै - मजन हरि जन धूर । भाइ भगत भरम भउ नासै - हरि नानक सदा हजूर । (405-406)

अर्थः- हे नानक ! (कह-) परमात्मा के सेवकों (के चरणों) की धूड़ में (किया हुआ) स्नान (मनुष्य के) जन्मों-जन्मांतरों के (किए हुए) पाप दूर कर देता है, प्रभू-प्रेम से भक्ति की बरकति से (मनुष्य का) हरेक किस्म का डर वहम नाश हो जाता है, और परमात्मा सदा अंग-संग प्रतीत होने लग पड़ता है ।

3. अम्रित बाणी हरि-हरि तेरी । सुण-सुण होवै परम गत मेरी । जलन बुझी सीतल होइ मनूआ - सतिगुर का दरसन पाए जीउ ।

अर्थः- हे हरि ! तेरी महिमा की वाणी आत्मिक जीवन देने वाली है (आत्मिक मौत से बचाने वाली है), (गुरु की उचारी हुई ये वाणी) बार बार सुन के मेरी ऊँची आत्मिक अवस्था बनती जा रही है । गुरु का दर्शन करके (तृष्णा, ईश्या आदि की) जलन बुझ जाती है और मन ठंडा ठार हो जाता है ।

सूख भइआ दुख दूर पराना । संत रसन हरि नाम वखाना । जल थल नीर भरे सर सुभर - बिरथा कोइ न जाए जीउ ।

अर्थः- गुरु की जीभ ने (जब) परमात्मा का नाम उचारा (जिसने उसको सुना उस के अंदर) आत्मिक आनंद पैदा हो गया (उस का) दुख दूर भाग गया । (जैसे बरखा होने से) गड्ढ (टोए टिब्बे) तालाब सब पानी से नाको नाक भर जाते हैं (वैसे ही गुरु के दर पे प्रभु नाम की बरखा होती है तब जो भाग्यशाली मनुष्य गुरु की शरण में आते हैं उनका मन, उनकी ज्ञानेंद्रियां सब नाम जल से नाको नाक भर जाती है । गुरु के दर पे आया कोई मनुष्य (नाम अमृत) से वंचित नहीं रह जाता ।

दइआ धारी तिन सिरजनहारे । जीअ जंत सगले प्रतिपारे । मिहरवान किरपाल दइआला - सगले त्रिपत अघाए जीउ ।

अर्थः- उस निर्माता प्रभु ने मेहर की (और गुरु को भेजा इस तरह उसने सृष्टि के) सारे जीवों की (विकारों से) रक्षा (की तरकीब) की । मेहरवान, कृपाल, दयावान (परमात्मा की मेहर से गुरु की शरण आए) सारे जीव (माया की प्यास भूख की ओर से) पूर्ण तौर पे तृप्त हो गए ।

वण त्रिण त्रिभवण कीतोन हरिआ । करणहार खिन भीतर करिआ । गुरमुख नानक तिसै अराधे - मन की आस पुजाए जीउ । (103)

अर्थः- (जैसे जब) जगत के पैदा करने वाले प्रभु ने (बरखा की तो) एक पल में ही जंगल, घास और सारा त्रिवनी जगत हरा कर दिया (उसी तरह उसका भेजा हुआ गुरु, नाम की बरखा करता है, गुरु दर पे आए लोगों के हृदय नाम जल से आत्मिक जीवन वाले बन जाते हैं) । हे नानक ! गुरु की शरण पड़ कर जो मनुष्य उस परमात्मा को स्मरण करता

है, परमात्मा उसके मन की आस पूरी कर देता है (दुनिया की आसा तृष्णा में भटकने से उसको बचा लेता है) ।

गुरु साहब ने श्लोकों के जरिए यह स्पष्ट कर दिया है की बाहरी कर्मकांड तीर्थ स्नान नहाना धोना इत्यादि इत्यादि का कोई फायदा विशेष नहीं है । कमाया हुआ कर्म आत्मा विशेष को भुगतना विशेष ही पड़ेगा अपने पूरे मन के साथ । चाहे इस सृष्टि के सभी महान महान गुरु सतगुरु देवता इत्यादि सब मिलकर अपनी पूर्ण क्षमता से एक आत्मा के कर्म को हिलाने की कोशिश भी करें तब भी वह नाकाम विशेष ही रहेंगे । इलाज सिर्फ एक ही है कि पिछले का पूर्णता हिसाब और आगे की तौबा विशेष ।

सच्ची तड़प आत्मा विशेष को साबित करनी है कि वह अपने एक परमात्मा विशेष से अनंत जन्मों से बिछड़ी हुई है और अब वह सच में अपने पूरे मन से अपने प्रीतम से मिलना चाहती है । यह उसे स्वंय खुद ही अपने अंतर में साबित करना है कि अब बस बहुत हो गया यह संसार सब एक स्वप्न समान है और इसे छोड़कर वह एक पूर्ण सच्ची महाशक्ति में सदा के लिए लीन होना चाहती है । "बहुत जनम

बिछुरे थे माधउ, इहु जनम तुम्हारे लेखे । कह रविदास आस लग जीवउ, चिर भइओ दरसन देखे ।"

आत्मा विशेष को एक सच्चे परमात्मा की शरण में ही जाना पड़ेगा जो कि केवल और केवल उसके अंतर में सदा 24 घंटे विद्यमान विशेष है । बाहर इस आत्मा को सिर्फ धोखा फरेब छल ही प्राप्त होगा चाहे वह जितना मर्जी जोर लगाकर खोजबीन करें । जो वह पूर्ण सच्ची महाशक्ति है, इस शरीर विशेष के अंदर ही इस आत्मा का इंतजार विशेष कर रही है की कब वह अपने नौ द्वार छोड़कर दसवें द्वार में उससे सच्चा प्रेम जाहिर करके सदा के लिये लीन विशेष होगी, वह भी सिर्फ जीते जी.....! "जिह बिध गुर उपदेसिआ सो सुन रे भाई । नानक कहत पुकार कै गहु प्रभ सरनाई ।"

अब फैसला केवल रूह विशेष को ही करना है कि वह किस रथ विशेष को खींचना - सींचना तथा सवार होना पसंद करती है.....? अब आत्मा विशेष को स्वयं यह आवश्यक आत्मिक फैसला लेना हैं कि उसे किसकी धोती - पजामा पकड़ कर या खींचकर आगे जाना है । सांसारिक कर्मकांडों या धार्मिक हस्तियों के कपड़े खींचने या नाक रगड़ने या माथे

टेकने इत्यादि इत्यादि में जो आत्मा विशेष लगी हुई है उनका कोई फायदा विशेष नहीं है। अगर परमात्मा स्वयं आत्मा के अंदर ही मौजूद है तो उसे केवल और केवल अपने ही धोती के अंदर घुसना विशेष पड़ेगा अपने निजी उत्थान विशेष हेतु। बाहर सिर्फ आत्मा विशेष को केवल धोखा या छलावा ही मिलेगा। यह सारा खेल सिर्फ परमात्मा की सोच के अंदर खेला जा रहा है और कितना ही सटीक और स्थूल साबित विशेष होता है। "जग जीवन ऐसा सुपने जैसा जीवन सुपन समानं।" अगर परमात्मा विशेष कहीं है तो सिर्फ वह 9 द्वारों से परे आत्मा के अपने निजी दसवें द्वार पर बैठा उसका इंतजार विशेष कर रहा है। इसीलिए आत्मा विशेष को मुर्दा परस्ती छोड़ अपने अंदर जाने का प्रयत्न विशेष करना चाहिए क्योंकि परमात्मा जैसी अगर महाशक्ति कहीं विद्यमान है तो केवल इस शरीर के अंदर है। बताने वाले तो अपना उद्यम विशेष कर शिक्षा देकर अगले मंडलों में अपना जन्म सफल विशेष कर के चले गए, उनके कपड़े खींचने, स्थानो विशेषो के पीछे भागने या अलग-अलग धार्मिक कर्मकांड विशेष करने से आत्मा का कोई भी निजी विशेष फायदा

नहीं होने वाला है । यह केवल आत्मा विशेष की मुरदापरस्ती विशेष ही साबत होगी । "एक राम दशरथ का बेटा - एक राम घट-घट में बैठा । एक राम का सकल पसारा - एक राम त्रिभुवन से न्यारा (हमरा राम सबसे नयारा !)।" अब आत्मा विशेष को चयन करना है कि उसे कौन सा राम चाहिए क्या उसे भौतिक राम के पीछे भागना है या उसे मन के पीछे भागना है या उसे इस समर्था विशेष के चक्रव्यूह में फसना है या उसे केवल एक परम चेतन महाशक्ति का चयन विशेष करना है ।

नतीजा विशेष निश्चित ही है स्वयं की मुक्ति विशेष की ओर अग्रसर होना या फिर से एक बार और जन्म मरण के कर्मकांड में सदा के लिए डुबकी विशेष लगाने के अभ्यास हेतु.....!

"इही तेरा अउसर इह तेरी बार । घट भीतर तू देख बिचार ।"
कहत कबीर जीत कै हार । बहु बिध कहिओ पुकार पुकार ।

(पाठी माँ साहिबा)

हक हक हक

ऐक शब्द

उपरोक्त अर्थों में कहे गये गुरू-सतगुरू-शबद-नाम-सच्चा नाम इत्यादि विशेष - विशेषो का केवल और केवल ऐक ही अर्थ विशेष है कि – "रागमई प्रकाशित सुगंधित आवाज़ विशेष" । इसके आलावा सारे अर्थ केवल मनमत हैं – गुरूमत का इससे कोई संबंध विशेष नंही हैं ।

"सबद गुरू - सुरत धुन चेला । गुण गोबिंद - नाम धुन बाणी ।"